किया है?''

साध्वी मृगावती ने कहा-''यहां से उठिए, यहां सांप आपके शरीर पर चढ़ने वाला है।''

साध्वी चन्दना ने देखा कि गहन अंधकार है उसे तो कहीं सांप दिखाई नहीं दे रहा था।

साध्वी चन्दना ने साध्वी मृगावती से पूछा- ''यहां तो सांप दिखाई नहीं देता।''

साध्वी मृगावती ने झट से सांप को उठाया और दूसरी ओर फेंक दिया। साध्वी चन्दना ने देखा, सचमुच सांप था। साध्वी चन्दना ने पूछा- ''क्या तूने इस गहन अंधकार में सांप को पकड़ा है? क्या तुम्हें केवलज्ञान तो प्राप्त नहीं हो गया?''

साध्वी मृगावती ने कहा- ''गुरूणी जी! आपकी कृपा से मुझे केवलज्ञान प्राप्त हो गया है।''

उसी समय साध्वी चन्दनबाला संभली। उसने चिंतन किया कि उसने मृगावती साध्वी की आशातना की है। केवली के कथन को असत्य ठहराया है। वह पश्चाताप में डूब गई। यही पश्चाताप साध्वी चन्दना के लिए वरदान सिद्ध हुआ।

इसी आत्म-चिंतन में डूबी चन्दना को भी केवलज्ञान-केवलदर्शन प्राप्त हो गया।

इस प्रकार एक रात्रि में शिष्या मृगावती और गुरूणी चन्दना ने केवलज्ञान प्राप्त किया। यही उनके जीवन का उद्देश्य था। अब उनका जन्म-मरण समाप्त हो चुका था। अब वे मोक्षगामिनी बन गई थीं।

उपासना का फल

इसी प्रसंग में गणधर गौतम ने प्रभु महावीर से निम्न प्रश्न पूछे-

गणधर गौतम- ''भगवन्! श्रमण ब्राह्मण की पर्युपासना करने वाले को उसका फल क्या मिलता है?''

प्रभु महावीर- ''उसकी पर्युपासना से सत्शास्त्र श्रवण करने को मिलता है।''

गणधर गौतम-''श्रवण का फल क्या है?''

प्रभु महावीर-''सुनने से ज्ञान होता है।''

गणधर गौतम-''जानने का फल क्या है?''

प्रभु महावीर-''जानने का फल विज्ञान है।''

गणधर गौतम-''विज्ञान का फल क्या है?''

प्रभु महावीर-''विज्ञान का फल प्रत्याख्यान है।''

गणधर गौतम-''प्रभु! प्रत्याख्यान का फल क्या होता है?''

प्रभु महावीर- ''प्रत्याख्यान का फल संयम है। प्रत्याख्यान होने के पश्चात् सर्वस्व त्याग रूप संयम होता है।''

गणधर गौतम- ''प्रभु! संयम का फल क्या है?''

प्रभु महावीर- ''संयम का फल आस्रव (रहितपना) है। आत्म-भाव में रमण करना है।''

गणधर गौतम- ''आस्रव निरूंधन का फल क्या है?''

प्रभु महावीर- ''उसका फल तप है।''

गणधर गौतम- ''तप का फल क्या है?''

प्रभु महावीर- ''तप कर्मरूपी मैल को नष्ट करता है।''

गणधर गौतम- ''कर्मरूपी मैल नष्ट होने से किस फल की प्राप्ति होती है?''

प्रभु महावीर- ''उससे अक्रियापन प्राप्त होता है।''

गणधर गौतम- ''अक्रियापन से क्या प्राप्त होता है?''

प्रभु महावीर- ''अक्रियापन का फल मोक्ष है।''

इसी वर्ष भगवान के शिष्य वेहास और अभय आदि श्रमणों ने विपुलाचल पर मोक्ष प्राप्त किया। प्रभु महावीर ने २५वां चातुर्मास राजगृह में व्यतीत किया।

मैतार्य मुनि

मगध देश के राजा श्रेणिक के शासनकाल में एक चाण्डाल राजगृह में रहता था। उसका नाम मेहर (यम) था। उसकी पत्नी मेती बड़े घरों की सफाई आदि के कार्य के लिए जाती थी। उसका एक ऐसे सम्पन्न परिवार में आना-जाना था जहां कि बच्चे पैदा होते ही मर जाया करते थे। सेठानी का जीवन एक बांझ स्त्री से ज्यादा दुःखमय था क्योंकि बांझ प्रसव पीड़ा से बच जाती है। यह तो प्रसव वेदना भी सहती थी और निःसंतान भी रहती थी।

एक समय की बात है कि सेठानी ने अपना दुःख मेती नाम की चाण्डलिनी से कहा।

मेती ने सेठानी को धैर्य बंधाते हुए कहा- ''सेठानी जी! आप दुःखी मत होइए। इस बार अगर मेरे संतान हुई, तो मैं तुम्हें दे दूंगी।'' सेठानी व मेती में गुप्त समझौता हो गया।

कालान्तर में दोनों स्त्रियां गर्भवती हुई। सेठानी ने एक कन्या को जन्म दिया और मेती ने एक पुत्र को। रातोरात दोनों संतानों की अदला-बदली हो गई। सेठानी ने अपने पुत्र का नाम मेतार्य रखा। उसका लालन-पालन चाव से हुआ।

जब मैतार्य कुमार १६ वर्ष का हुआ, तो स्वर्ग में स्थित एक मित्र देव ने उसे प्रतिबोध देने की बात सोची। उसने मैतार्य को स्वपन में कहा कि- ''अब गृह-त्याग करके संयम ग्रहण करो।''

पर मैतार्य ने स्वप्न को स्वप्न समझा। उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। समय बीता। मैतार्य की शादी ८ कन्याओं के साथ तय हुई।

देव ने पुनः उसे सावधान करते हुए कहा- ''अब तुम्हारी शादी होने वाली है। शादी के बाद तू भोग-विलास में फंस जाएगा। इसलिए अब समय है कि तू असार संसार का त्याग कर साधु बन जा।'' पर वह न माना। देव ने सोचा- 'इसे अब किसी अन्य ढंग से प्रतिबोध देना चाहिए।'

देव ने एक योजना बनाई। उसने मेती चाण्डलिनी के शरीर में प्रवेश किया। देव के वशीभूत हुई चाण्डालिनी यह प्रचार करने लगी- ''मैतार्य मेरा पुत्र है। मैंने इसे जन्म दिया है, इसका पिता मेहर है। मैंने सेठानी से अदला-बदला की थी। अब यह तरूण हो गया है। हम इसकी शादी चाण्डाल परिवार में करेंगे न कि श्रेष्ठी कन्याओं के यहां उसकी शादी करेंगे।''

मैतार्य के चाण्डाल होने की सूचना से मैतार्य से आठ कन्याओं ने संपर्क तोड़ लिया। मैतार्य को अपना घर छोड़ना पड़ा। मैतार्य पुनः चाण्डाल परिवार में अपनी माता के पास आ गया। मैतार्य चाण्डाल पुत्र होते हुए भी वह इस रूप में नहीं रहना चाहता था। इतनी बेइज्जती उसके लिए असहनीय थी।

अब मैतार्य एकांत में बैठा अपनी आंखों से आंसू बहाता रहता। उसे समझ में न आता कि वह चाण्डाल-पुत्र है या सेठानी का पुत्र?

एक दिन वह इसी तरह दुःखी बैठा था कि स्वर्ग से वही मित्र देव प्रकट होकर कहने लगे- ''मित्र!

मुझे पहचानो। मैं उज्जयिनी के राजा मुनिचन्द्र का पुत्र था और तुम पुरोहित पुत्र। संयम का पालन करने के कारण हम दोनों देवता बने। तीर्थंकर देव ने तुम्हें दुर्लभबोधि बताया था। मैंने तुम्हें वचन दिया था कि स्वर्ग से आकर तुम्हें प्रतिबोध दूंगा। उठो! जागो और मानव-जन्म की कद्र करो। संयम ग्रहण कर आत्मा का कल्याण करो।''

अब मैतार्य को अपने पूर्वभव की सब बातें याद आने लगीं।

मैतार्य पहले से अपनी दशा से दुःखी था। उसने देव से कहा- ''हे मित्र! तूने यह क्या अनर्थ किया? मुझे श्रेष्ठी-पुत्र से चाण्डाल पुत्र बना दिया। पहले मेरी प्रतिष्ठा वापस कराओ। अब मैं पुनः श्रेष्ठी पुत्र तो नहीं बन सकता। अतः तुम मुझे राजा श्रेणिक के जामाता बनाओ, तभी दीक्षा ग्रहण करूंगा।''

देवता ने कहा- ''ठीक है, जैसा तुम चाहते हो, वैसा हो जाएगा। मैं तुम्हें राजा श्रेणिक का जामाता बनाऊंगा।''

मैतार्य यह सुनकर प्रसन्न हो गया। देवता देवलोक में वापस हो गया। देवता ने अपनी देवमाया द्वारा एक योजना बनाई। उसने एक बकरे की उत्पत्ति की, जो सोने की मैंगनी करता था। लोग उस बकरे से हैरान थे।

मैतार्य ने अपने पिता यम को कहा- ''पिताजी! राजा श्रेणिक को यह स्वर्ण-मैंगनी भेंट करके प्रसन्न करो। जब राजा प्रसन्न हो जाए, तो बदले में मेरे लिए राजकन्या का रिश्ता मांग लेना।''

मैतार्य के पिता ने तीन दिन की मैंगनी तीन थालों में इकट्ठी कर राजा श्रेणिक को भेंट की। अभयकुमार को भी इन स्वर्ण-मैंगनियों को देखकर अचम्भा हुआ। उसने पूछा- ''सोने की मैंगनी तुम कहां से लाते हो?''

यम ने कहा- ''हमारे घर एक बकरा है जो रोजाना सोने की मैंगनी देता है। वह आम बकरों से अलग है।''

अभयकुमार ने पूछा- ''तुम यह मैंगनियां राजा को क्यों देते हो?''

यम ने स्पष्ट उत्तर दिया- ''मन्त्रिवर! बात यह है कि मैं राजकन्या की शादी अपने पुत्र से करने का इच्छुक हूं।''

इतनी बात सुनते ही राजा श्रेणिक क्रुद्ध हो गया। पर अभय ने अपनी बुद्धि से काम लेते हुए यम से कहा- ''पहले तुम हमें अपना बकरा दे जाओ। हम सलाह करके तुम्हें बताएंगे।''

दूसरे दिन बकरा राजा श्रेणिक के पास आ गया। वहां उसने मैंगनियां दुर्गन्धपूर्ण कीं। अभय को उस बकरे और सामान्य बकरे में कुछ अंतर लगा। वह सोचने लगा- 'यह बकरा कोई देवमाया है। अगर देवता की इच्छा यही है तो मुझे चण्डाल की बात की पूरी परीक्षा करनी चाहिए।'

दूसरे दिन चण्डाल बकरा वापस लेने आया तो अभय कुमार ने उसे बकरा सौंपते हुए कहा-''यदि तुम हमारी शर्तें पूरी कर सको तो मगधेश श्रेणिक अपनी कन्या का विवाह तुम्हारे पुत्र से कर देंगे।''

चण्डाल ने पूछा- ''आप शर्त बताएं।''

अभय ने कहा- ''अगर रातभर में तुम सोने की दीवार राजगृह के चारों ओर खड़ी कर दो। वैभारगिरि से राजगृह तक एक सेतु का निर्माण करो। उस सेतु के नीचे गंगा, यमुना, सरस्वती और क्षीरसागर का सम्मिलित जल प्रवाहित करो। उस मिश्रित जल में तुम्हारा पुत्र स्नान करके पवित्र बने, तभी हम उसे राज-जमाता स्वीकार करेंगे। इसके बाद राज्य-सिंहासन पर बैठ छत्र, चामर धारण करे।

तभी वह राजकन्या का स्वामी होगा।''

चाण्डाल ने सारी बातें ध्यान से सुनीं। घर आकर सभी बातें अपने पुत्र को बता दीं। वे सारी शर्तें मित्र देव से कहीं। देव के लिए क्या असम्भव था? रातभर में सब बातें पूरी हो गई। मैतार्य को चार प्रकार के मिश्रित जल से स्नान कराकर सिंहासन पर बिठाया गया। छत्र, चामर धारण कराया। राजगृही की जनता ने यह सुखद आश्चर्य देखा।

राजा श्रेणिक ने अपनी कन्या की शादी मैतार्य से कर दी। अब वह राज-जामाता बन गया। उसकी प्रतिष्ठा जितनी गिरी थी, उससे कई गुणा बढ़ गई। अब वह महलों के सुख भोग रहा था। अब मित्र देव पुनः प्रतिबोध देने आया।

मैतार्य ने कहा- ''मित्र! मेरी नई शादी हुई है। मुझे १२ वर्ष तक पत्नी से भोग भोगने दो। उसके बाद मैं संयम ग्रहण करूंगा।''

१२ वर्ष का समय बीत चुका था। तो राजकन्या ने कहा- ''स्वामी! १२ वर्ष आप अपनी इच्छा से घर पर रहे। अब १२ वर्ष मेरी इच्छा से घर पर रहो।''

इस बार भी देव पुनः आया पर मेतार्य ने १२ वर्ष का समय मांगा।

२४ वर्ष बीतने पर मेतार्य प्रभु महावीर के चरणों में मुनि बन गया। उसने ९ पूर्वों तक शास्त्रों का अध्ययन किया, फिर एकलविहारी बन आत्म-साधना करने लगा।

एक बार मुनि मैतार्य राजगृह नगर में आए।

मासिक उपवास का पारणा करने के लिए एक सुनार के घर गए। सुनार अपने कार्य में व्यस्त था। राजा श्रेणिक के आदेश में वह सोने के जौ बना रहा था। मुनि को आया देखकर उसने अपना कार्य ज्यों का त्यों छोड़ा। उनकी वन्दना की। भिक्षा देने के लिए वह घर के अन्दर गया।

उधर एक मुर्गा आंगन में पीपल के वृक्ष पर बैठा था। उसने उन जौ को असल समझा। वह सारे जौ निगल गया और पुनः वृक्ष पर जा बैठा।

सुनार भिक्षान्न देकर बाहर आया। जौ गायब थे। उसने मुनि को चोर समझा। उसने मुनि से पूछा- ''महाराज! मेरे स्वर्णमय जौ कहां गए? आपके पास हों तो वापस कर दो।''

मुनि चुप रहे। उन्होंने सोचा- 'अगर मैं कहूंगा कि जौ मुर्गा निगल गया है, तो यह मुर्गे को मार देगा। अगर अपना नाम लूं तो बात झूठी है। बात जीव-दया की थी, सो नाम लेना मुश्किल था।'

यह समय धर्म-संकट का था, सो मुनिराज मौन रहे। सुनार ने उन्हें धूप में खड़ा कर उनके माथे पर गीला चमड़ा बांध दिया। मुनि ने सब कुछ समता से सहन किया। परीषहों के बीच उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हो गया और वह मुनिराज मोक्ष पधार चुके थे।

सुनार के अचानक ध्यान आया कि मुनिराज तो राजा श्रेणिक के जामाता हैं। राजा मुझे प्राण-दण्ड देगा, अच्छा है, मैं भी प्रभु महावीर के चरणों के संयम ग्रहण कर लूं। सुनार ने दीक्षा ली और सद्गति को प्राप्त किया।

रोहिणेय चोर

भगवान महावीर के शिष्यों में रोहिणेय दस्यु का नाम बहुत प्रसिद्ध है। राजगृह में रोहिणेय का पूरा आतंक था। राजा श्रेणिक ने अनेक बार इसे पकड़ने की कोशिश की, पर यह कभी हाथ न लगा। कहा

जाता है कि रोहिणेय वेश बदलने में माहिर था, झूठ बोलने में इतना माहिर था कि उसका झूठ सत्य लगता था।

उसका पिता लोहखुर था, जो पहले से ही मगध के राजा का सिरदर्द था। लोहखुर जब मरने लगा तो उसने पुत्र को अंतिम शिक्षा प्रदान करते हुए कहा- "कभी महावीर के वचन मत सुनना।"

पर कभी वह राजगृह में गुणशील चैत्य के पास जंगल में जा रहा था। उसने दोनों कानों को बंद कर लिया, ताकि प्रभु का उपदेश उसके कानों में न पड़ जाए। नंगे पांव घूमते रोहिणेय के पांव में तीक्ष्ण कांटा लगा। हाथ कान से उठाने पड़े। पांव से कांटा निकला, तो प्रभु महावीर का एक वाक्य कान में पड़ा- देवों का जीवन भव्य होता है। देवों को कभी पसीना नहीं आता। उनकी पलकें भी मनुष्यों की तरह नहीं झपकतीं। उनके पांव जमीन पर नहीं टिकते। इतना ही नहीं, उनके गले की मालाओं के फूल भी नहीं मुरझाते।"

यह प्रभु महावीर वाणी उसने सुनी। मन में पिता की आज्ञा भंग करने का दुःख हुआ। इस चोर का इतना आतंक था कि लोग शहर छोड़ने लगे। अभयकुमार को रोहिणेय चोर को पकड़ने की जिम्मेवारी सौंपी गई।

रोहिणेय को अभयकुमार ने बड़े मायाजाल से ढूंढ़ा। उसे नशा पिलाकर महल में ले आया। महल को सुन्दर श्रृंगारित किया गया। नृत्य होने लगा। स्वर्ग का दृश्य उपस्थित किया गया।

कुछ समय बाद रोहिणेय का नशा उतरा। रोहिणेय ने अपने आसपास सजी-धजी स्त्रियों को पाया। उसने पूछा- "मैं कहां हूं?"

एक सजी धजी स्त्री ने कहा- "आप मरकर स्वर्ग में पैदा हुए हैं। अब आप स्वर्ग में हैं। हम आपकी सेवा में हैं। आज्ञा दीजिए। हम आपके लिए क्या कर सकते हैं?"

रोहिणेय ने आसपास देखा फिर उसे प्रभु महावीर का देवों के बारे में कथन याद आ गया।

उसने अभयकुमार को बता दिया- "मैं ही रोहिणेय चोर हूं। बाकी मैं प्रभु महावीर की कृपा से आज बच गया हूं। आप चाहें तो मुझे सजा दे दीजिए। मैं स्वयं तो अनगार बनना चाहता हूं।"

राजा श्रेणिक ने रोहिणेय को छोड़ दिया। रोहिणेय चोर से मुनि बन गया। प्रभु महावीर के चरणों में एक दस्यु ने अहिंसक ढंग से समर्पण ही नहीं किया बल्कि वैभारगिरि की गुफा में छिपाया सारा धन राजा श्रेणिक के कोष में जमा करवा दिया। राजा श्रेणिक ने वह धन जिनका था, उन्हें लौटा दिया।

इस प्रकार प्रभु महावीर ने एक दस्यु का जीवन ही पलट दिया।

पच्चीसवां वर्ष राजाः कोणिक की अपूर्व भक्ति

राजा बिम्बसार श्रेणिक का अनेक पुत्र-पुत्रियों का परिवार था। रानी चेलना का बेटा कोणिक था, जिसका दूसरा नाम अजातशत्रु भी है। जब वह गर्भ में था तो माता चेलना को पति के कलेजे का मांस खाने की इच्छा उत्पन्न हुई थी। माता ने पहले इस गर्भस्थ जीव को विनाश करने का हर संभव यत्न किया। पर रानी चेलना असफल रही। फिर उसने बालक को जन्म देकर उसे रूढ़ि पर फिकवा दिया, जहां मुर्गे ने इसकी छोटी उंगली को काटा। इसी कारण इसका नाम कोणिक पड़ा। राजा श्रेणिक ने बालक को रूढ़ि से उठवाकर इसका पोषण किया।

जब यह बड़ा हुआ, तो यह महत्त्वाकांक्षी था। राजपाट की खातिर इसने अपने पिता को कैद कर

लिया। अपने भाईयों की सहायता से यह राजा बन गया।

रानी चेलना की फटकार पर इसने अपने पिता को कैद से छोड़ने का फैसला किया। यह कुल्हाड़ी लेकर अपने पिता के बन्धन काटने आ रहा था कि श्रेणिक ने समझा कि 'यह मुझे कुल्हाड़ी से काटने आ रहा है।' यह सोचकर श्रेणिक ने हीरा चाटकर प्राण त्याग दिए। इस घटना का कोणिक पर बड़ा प्रभाव पड़ा और उसने राजगृही को छोड़ चम्पा को अपनी राजधानी बनाया।

पर इस सबके होते हुए भी अपने पिता श्रेणिक की तरह प्रभु महावीर का परम भक्त था। औपपातिकसूत्र में इसकी भक्ति का वर्णन सुन्दर ढंग से प्राप्त होता है।

प्रभु महावीर चौबीसवां वर्षावास राजगृह सम्पन्न कर चम्पा पधारे। यहां का राजा कोणिक भगवान महावीर के आगमन का संवाद सुनकर प्रसन्न होता था। जब इसे प्रभु महावीर के चम्पा के उपनगर में आगमन का समाचार मिला, तो सर्वप्रथम इसने अपने ५ राजसी चिन्ह दूर किए। उत्तरासन ग्रहण किया। अंजलिबद्ध सात-आठ कदम महावीर की दिशा की ओर बढ़ा। बाएं पैर व दाएं पैर को संकुचित किया। फिर तिक्खुतो के पाठ से अभिवादन कर बोला- ''श्रमण भगवान महावीर जो तरण तारण जहाज हैं, तीर्थंकर है यावत् सिद्धगति के अभिलाषावान हैं। मेरे धर्मोपदेशक और धर्माचार्य हैं, उन्हें मेरा नमस्कार हो। यहां से मैं तटस्थ भगवान को वन्दन करता हूं। भगवान वहीं से मुझे देखते हैं।''

फिर सूचना देने वाले को एक लाख आठ हजार रजत मुद्राएं प्रदान करते हुए कहा- जब भगवान महावीर चम्पा के पूर्णभद्र चैत्य में पधारें, तब मुझे पुनः सूचित करना।''

इसी सन्दर्भ में राजा कोणिक द्वारा प्रभु महावीर को शाही ढंग से वन्दन करने का अलौकिक वर्णन है।

प्रभु महावीर का उपदेश सुनकर उसने निर्ग्रन्थ प्रवचन को श्रद्धा से स्वीकार किया।

इसी वर्ष प्रभु महावीर के शिष्य वेहास, अभय आदि ने विपुलाचल पर मोक्ष प्राप्त किया।

भगवान महावीर के प्रवचन से प्रभावित होकर अनेक लोगों ने प्रभु महावीर से प्रव्रज्या ग्रहण की। मुनिधर्म अंगीकार करने वालों में पद्म, महापद्म, भद्र, सुभद्र, पद्मभद्र, पद्मसेन, पद्मगुलक, नलिनीगुल्म, आनंद और नन्दन[११] प्रमुख थे जो राजा श्रेणिक के पौत्र थे। इनके अतिरिक्त जिनपालित[१२] ने श्रमणधर्म अंगीकार किया। पालित[१३]- जैसे बड़े व्यापारी ने श्रावकधर्म स्वीकार किया। यह चातुर्मास राजगृह में सम्पन्न हुआ।

छब्बीसवां वर्ष

चम्पा से भगवान महावीर ने विदेहभूमि की ओर विहार किया। वहां के गाथापति धृतिधर क्षेमक ने संयम ग्रहण किया। क्षेम और धृतिधर ने १६ वर्ष संयम का पालन कर विपुल पर्वत पर अनशन द्वारा सिद्ध गति प्राप्त की।[१४]

चातुर्मास के बाद प्रभु महावीर अंग देश पधारे। राजा श्रेणिक की मृत्यु के पश्चात् उनका पुत्र कोणिक राजा बना। इन दिनों वैशाली युद्ध-स्थल बन चुकी थी। एक तरफ मगध का सम्राट् कोणिक और उसके दस सौतेले भाई थे। सभी अपनी विशाल सेना के साथ वैशाली की रणभूमि में पहुंचे हुए थे। दूसरी ओर वैशाली गणराज्य प्रमुख चेटक थे। इनके साथ काशी, कोशल देश के १८ गणराजा अपनी विशाल सेनाओं के साथ आए हुए थे। झगड़े का कारण हाथी और एक हार था। ये दोनों वस्तुएं राजा श्रेणिक ने अपने जीवनकाल में हल्ल-विहल्लकुमार को दी थीं। राजा कोणिक की रानी पद्मावती दोनों वस्तुएं स्वयं

चाहती थी। कोणिक ने दोनों वस्तुएं मांगीं। विहल्लकुमार ने इंकार कर दिया। उसने चम्पा में रहना ठीक न समझा। दोनों वस्तुओं और परिवार के साथ वह राजा चेटक की शरण में आ गया। राजा चेटक के पास कोणिक ने पुनः दूत भेजकर दोनों वस्तुएं मांगी। राजा चेटक श्रमणोपासक श्रावक थे। उन्होंने शरणागत की रक्षा के लिए कोणिक राजा के युद्ध की चुनौती को स्वीकार किया। वैशाली में घमासान युद्ध होने लगा, जिसे जैन इतिहास में रथ-मूसल संग्राम का नाम दिया है। इसका विस्तृत विवरण निरयावलिका उपांग में विस्तृत रूप से मिलता है।

इस युद्ध में कालकुमार आदि दस भाई काम आए। लड़ाई चल रही थी। विनाश जोरों पर था। इस मध्य प्रभु महावीर चम्पानगरी के पूर्णभद्र चैत्य में पधारे। नागरिक जब प्रभु महावीर के दर्शन करने आए, उन नागरिकों में १० कुमारों की माताएं शामिल थीं। राजमाताओं ने प्रभु महावीर से पूछा-"भगवन्! कालकुमार आदि लड़ाई में आए हैं। क्या वे सकुशल वापस लौटेंगे?"

भगवान महावीर ने उत्तर दिया-"आपके पुत्र तो युद्ध-क्षेत्र में मारे गए हैं?"

भगवान महावीर ने रानियों को वैराग्य उपदेश के माध्यम से सांत्वना दी। संसार की असारता समझाई। सभी रानियों ने प्रभु दीक्षा ग्रहण कर श्रमणी संघ में प्रवेश किया।

सत्ताईसवां वर्ष

यह वर्ष प्रभु महावीर के जीवन का महत्त्वपूर्ण वर्ष था। प्रभु महावीर चम्पा में कुछ समय धर्म-प्रचार करने के पश्चात् पुनः मिथिला पधारे। यह वर्षावास भी मिथिला में सम्पन्न हुआ। अनेक भव्यात्माओं ने श्रावकधर्म व मुनिधर्म को स्वीकार किया।

प्रभु महावीर ग्राम-ग्राम धर्म-ध्वज फहराते हुए वैशाली पधारे। फिर श्रावस्ती की तरफ विहार किया। उन्हीं दिनों कोणिक के दो भ्राता हल्ल-विहल्ल जो वैशाली के विनाश का कारण बन रहे थे, किसी तरह संघर्ष से जान बचाकर मुनि बन गए।

गोशालक का उपद्रव

भगवान महावीर श्रावस्ती के कोष्टक उद्यान में पधारे। उन्हीं दिनों मंखलिपुत्र गोशालक भी नगर में अपने शिष्यों के साथ आया हुआ था। वह स्वयं को जिन, केवली, तीर्थंकर व सर्वज्ञ कहता था। गोशालक जीवन के प्रारम्भिक वर्षों में प्रभु महावीर का शिष्य बनकर साथ रहा था। उसने प्रभु महावीर से तेजोलेश्या सीखी। फिर उसने निमित्त शास्त्र में स्वयं को प्रसिद्ध किया। इन दो कारणों से वह स्वयं तीर्थंकर कहलाने लगा।

श्रावस्ती नगरी में गोशालक के दो परम भक्त थे। एक थी हालाहला कुम्हारिन और दूसरा अयंपुल गाथापति। गोशालक जब भी श्रावस्ती आता तो वह हालाहला की भाण्डशाला में ठहरता। दोनों सम्पन्न व प्रसिद्ध थे। गोशालक पहले तो प्रभु महावीर का स्वयं शिष्य बना था। फिर छह वर्ष तक साथ रहकर प्रभु महावीर के लिए मुसीबतें खड़ी करता रहा। फिर वह १८ वर्ष से प्रभु महावीर से अलग विचर रहा था। वह स्वयं को आजीवक मत का आचार्य कहता था। गोशालक पहले से ही यहां चातुर्मास के लिए ठहरा हुआ था। चातुर्मास पूरा होने के बाद भी वह यहां टिका हुआ था।

नगरचर्चा

एक दिन भगवान महावीर के प्रमुख शिष्य इन्द्रभूति भिक्षार्थ नगर में आए। उन्होंने श्रावस्ती नगरी के चौराहों पर यह जनचर्चा सुनी- "आजकल इस नगर में दो जिन विचरण कर रहे हैं, दोनों अपने को तीर्थंकर, सर्वज्ञ, केवली बताते हैं। एक हैं भगवान महावीर व दूसरा मंखलिपुत्र गोशालक।"

गणधर गौतम ने प्रभु महावीर से नगर में फैली जनचर्चा के बारे में बताया। प्रभु महावीर ने गणधर गौतम को गोशालक के बारे में बताते हुए कहा- "गोशालक कोई जिन, सर्वज्ञ, केवली या तीर्थंकर नहीं है। यह तो मेरा पूर्व-शिष्य है। यह तेजोलेश्या की आराधना द्वारा कुछ शक्ति का धारक है। पर यह छद्मस्थ है। कुछ नैमित्तक शास्त्र का भी ज्ञाता है।"

गणधर गौतम ने प्रभु महावीर की बातों को ध्यान से सुना।

गौशालक की आनन्द से चर्चा

प्रभु महावीर का एक शिष्य आनन्द नामक अनगार भिक्षा के लिए नगर में घूम रहा था। वह अचानक हालाहला कुम्हारिन के घर के पास से निकला। गोशालक अपने शिष्यों सहित वहां ठहरा हुआ था। उसने प्रभु महावीर के इस शिष्य को देखा। गोशालक उन्हें बोला-"देवानुप्रिय! जरा ठहर और एक बात कहता हूं उसे ध्यान से सुन। तुम्हारे धर्माचार्य की स्थिति इन लोभी व्यापारियों-जैसी है जिनकी कथा मैं तुम्हें सुनाता हूं-

पूर्व समय की बात है, एक नगर में रहने वाले कुछ व्यापारियों ने किराने का माल भरा। वह गाड़ी भरकर प्रदेश में चले गए। रास्ते में भयंकर जंगल आया। व्यापारी उसे पार करने लगे, जंगल था कि खत्म होने का नाम ही नहीं ले रहा था। मार्ग में ग्रामरहित, निर्जल, दीर्घ अटवी में वे व्यापारी प्रविष्ट हुए। पानी समाप्त हो चुका था। पानी की तालाश में व्यापारी भटकने लगे।

अचानक उन भटकते व्यापारियों की दृष्टि एक विशाल वल्मीक पर पड़ी। उसके ऊंचे-ऊंचे चार शिखर थे। व्यापारियों ने प्रथम शिखर फोड़ा। जहां स्वच्छ जल प्राप्त हुआ। सभी ने पानी पीया, बैलों को पिलाया। मार्ग में उपयोग के लिए भी बर्तनों को भरा। फिर व्यापारियों के मन में अन्य शिखरों के प्रति जिज्ञासा उत्पन्न हुई।

उन्होंने दूसरा शिखर फोड़ा, तो उसमें से विपुल स्वर्ण-राशि मिली। व्यापारियों का लोभ बढ़ता गया। उन्होंने तीसरा शिखर फोड़ा। उसमें अमूल्य मणिरत्न प्राप्त हुए। अब चौथा शिखर बाकी था। सभी व्यापारियों की उसे तोड़ने की तीव्र अभिलाषा थी। उन्हें विश्वास था कि इस शिखर को फोड़ने से अमूल्य वज्र रत्न प्राप्त होंगे। पर एक वृद्ध व्यापारी ने उन सभी व्यापारियों को ऐसा करने से रोकते हुए कहा- चतुर्थ शिखर नहीं फोड़ना चाहिए, क्योंकि यह हमारे लिए संकट का कारण हो सकता है।"

पर व्यापारियों की लोभवृत्ति इतनी प्रबल हो चुकी थी कि उन्होंने उस संतोषी व्यापारी की बात नहीं मानी। उन्होंने चौथा शिखर फोड़ा। उसमें से दृष्टि-विष सांप निकला। उसने सबको क्रोध भरी आंखों से देखा। सांप की दृष्टि पड़ते ही सब व्यापारी जलकर भस्म हो गए। केवल वही व्यापारी बच पाया जिसने चौथा शिखर फोड़ने को मना किया था।

"हे देवानुप्रिय! तुम्हारे धर्माचार्य और धर्म-गुरू श्रमण ज्ञातपुत्र ने श्रेष्ठ अवस्था प्राप्त की है। देव और मनुष्यादि में उनकी यश व कीर्ति फैली हुई है। अगर वह मेरे विरोध में कुछ भी कहेंगे तो मैं अपने तप-

तेज से उन्हें भस्म कर दूंगा।''

गोशालक की धमकी से आनन्द मुनि बहुत भयभीय हुआ। उसने प्रभु महावीर से सारा घटना-क्रम बताया। प्रभु महावीर ने आनंद को समझाते हुए कहा- वह अपने तप-तेज के एक ही प्रहार से किसी को भी भस्म कर सकता है, पर अरिहंत भगवान को नहीं। उसमें जितना अधिक तप तेज है, अनगार क्षमा से उस क्रोध का निग्रह करने में समर्थ है। अनगार के तप-तेज से स्थविर का तप तेज श्रेष्ठ है और उस (स्थविर) के तप-तेज से अनन्त गुणा तप-तेज अरिहंत परमात्मा का है। क्योंकि मुनि व अरिहंत में क्षमा गुण है इसलिए इन्हें जला नहीं सकता। हां, कुछ परिताप जरूर दे सकता है।

इसलिए तुम जाओ और गौतम इन्द्रभूति आदि श्रमण निर्ग्रन्थों को सूचित कर दो कि गोशालक इधर आ रहा है। कोई भी श्रमण उसकी द्वेषपूर्ण बातों से क्रोधित न हो, न ही उसे उसकी बात का उत्तर दे।''

गोशालक का आगमन

आनन्द मुनि ने प्रभु महावीर का सारा संदेश गणधर गौतम को सुनाया। सभी मुनि सावधान हो गए। गोशालक अपने संघ सहित कोष्टक चैत्य में पहुंचा और उसने कहा-''आयुष्मान काश्यप! मंखलिपुत्र जो कभी आपका शिष्य था, वह कथन तो आज ठीक है। पर आपको ज्ञात नहीं कि तुम्हारा वह शिष्य मरकर देवलोक में देवरूप में उत्पन्न हो चुका है। मैं मंखलिपुत्र गोशालक से भिन्न कोण्डियायन गोत्रीय उदायी हूं। गोशालक का शरीर मैंने इसलिए धारण किया है कि वह परीषह सहने में सक्षम है। यह मेरा सातवां शरीरान्तर प्रवेश है। हमारे सिद्धांत के अनुसार जो आज दिन तक मोक्ष गए हैं, जाते हैं, जाएंगे, वे सभी चौरासी लाख महाकल्प के उपरान्त सात देव भव, सात संयुक्त निकाय, सात सन्निगम और सात प्रवृत्त परिहार कर, पांच लाख साठ हजार छह सौ तीन कर्मभेदों का अनुक्रम से क्षय कर मोक्ष गए हैं और सिद्ध, बुद्ध, मुक्त हुए हैं।''

और भी सुनो। कुमार अवस्था में मेरे मन में प्रव्रज्या ग्रहण कर ब्रह्मचर्य व्रत पालन करने की इच्छा हुई। मैंने प्रव्रज्या ग्रहण की।

(१) मैंने निम्न सात प्रवृत्त परिहार किए। मेरा प्रथम शरीरान्तर राजगृह के बाहर मंडी कुक्षी चैत्य में उदायनक कोण्डियायन का शरीर त्यागकर ऐणयक के शरीर में २२ वर्ष तक रहा।

(२) मेरा दूसरा शरीरान्तर प्रवेश उद्दण्डपुर के बाहर चन्द्रावतरण चैत्य में ऐणयक का शरीर त्यागने के पश्चात् मल्लराम के रूप में हुआ। इस शरीर में मैं २१ वर्ष तक रहा।

(३) फिर उस शरीर को त्यागकर मैं चम्पानगरी के बाहर मण्डिक के शरीर में यहां २० वर्ष रहा।

(४) फिर मैंने वाराणसी के बाहर काम महावन चैत्य में रोहक के शरीर के चतुर्थ शरीरान्तर प्रवेश किया। यहां मैं १२ वर्ष तक रहा।

(५) आलभिआ नगरी के बाहर प्राप्त काल चैत्य में भारद्वाज के शरीर में १८ वर्ष तक रहा।

(६) वैशाली के कुण्डियायन चैत्य में गौतमपुत्र अर्जुन के शरीर में १७ वर्ष तक रहा।

(७) फिर श्रावस्ती नगरी में हालाहला कुम्हारिन के कुम्भकारायण में मंखलिपुत्र गोशालक के शरीर को ग्रहण किया है।

सो आप मंखलिपुत्र गोशालक की बात करते हैं, वह आपका शिष्य था। मैं वह नहीं। अब मैं दूसरा मंखलिपुत्र गोशालक हूं।

गोशालक के व्यर्थ प्रलाप को सुनकर प्रभु महावीर ने स्पष्ट किया-

"जैसे कोई चोर ग्रामवासियों से डरा हुआ भागता है, उस भागते चोर को खड्डा, गुफा, दुर्ग या विषम स्थान न मिलने पर वह ऊन, सन, कपास या तृण में अपने को छिपाने का प्रयास करता है। पर वह इन वस्तुओं से छिप नहीं सकता। फिर भी वह चोर स्वयं को इनमें छिपा मानता है। इसी प्रकार तुम सत्य को छिपाने के लिए मिथ्यात्व का सहारा ले रहे हो। अन्य न होते हुए भी, स्वयं को अन्य बता रहे हो। तुम्हारा यह कथन योग्य नहीं है।"

केवलज्ञानी से किसी की बात कैसे छिप सकती थी? वह त्रिकाल सर्वज्ञ प्रभु थे। इसीलिए उन्होंने आने वाले खतरे को भांपते हुए अपने श्रमणसंघ को सावधान किया।

गोशालक का क्रोध बढ़ रहा था, क्योंकि उसकी असलियत का भांडा भगवान महावीर ने फोड़कर जन-साधारण को उसकी असलियत की सूचना दी, लोगों को सावधान किया। प्रभु महावीर का संदेश था कि मिथ्यात्व के साथ किसी भी तरह का समझौता सम्यक्त्व के लिए घातक है।

गोशालक ने प्रभु महावीर को सम्बोधन करते हुए क्रोधिक स्वर में कहा- "काश्यप! तू आज ही नष्ट, विनष्ट और भ्रष्ट होगा। तेरा जीवन नहीं रहेगा।"

तेजोलेश्या द्वारा दो मुनियों को भस्म करना

गोशालक की बकवास व धमकी को सभी शिष्य व संघ ने सुना। पर प्रभु महावीर की आज्ञा को ध्यान में रखकर सब चुप रहे।

पूर्व देश का रहने वाला सर्वानुभूति अनगार यह बातें सुन रहा था। वह स्वभाव का भद्र, प्रकृति से विनीत व सरल था। अपने धर्माचार्य के प्रति अपमानजनक शब्द उसके लिए असहनीय थे। उसने गोशालक की धमकी की परवाह किए बिना गोशालक को समझाया- "गोशालक! किसी श्रमण ब्राह्मण से यदि कोई पुरुष एक भी आर्य वचन सुन लेता है, तो उन्हें वन्दना-नमस्कार करता है। पर्युपासना करता है। पर तू कैसा शिष्य है? प्रभु महावीर ने तुम्हें शिक्षा व दीक्षा दोनों प्रदान की। तुम्हारा उनके प्रति यह अपमान जनक व्यवहार तुझे शोभा नहीं देता। ऐसी बातें करना तुम्हारे लिए योग्य नहीं हैं।"

सुनक्षत्र मुनि की ऐसी वाणी सुनते ही गोशालक का चेहरा क्रोध से जलने लगा। उसने तेजोलेश्या से मुनि को उसी स्थान पर भस्म कर दिया।

गोशालक अब क्रोध की सीमाएं पार कर चुका था। उसी समय अयोध्या निवासी सुनक्षत्र मुनि को गोशालक का यह व्यवहार सहा न गया। धर्माचार्य की आज्ञा एक तरफ थी। मुनि का शव सामने नजर आ रहा था। यह क्षमा की सीमा थी। सुनक्षत्र मुनि ने गोशालक को सर्वानुभूति की तरह समझाने का प्रयत्न किया। गोशालक को हितकारी वचन अच्छे न लगे और उसने उन पर भी तेजोलेश्या छोड़ दी। इस बार तेजोलेश्या का प्रभाव मन्द था। मुनि छटपटाते प्रभु महावीर के पास आए, समाधिमरण द्वारा आत्मालोचना की। समस्त साधु-साध्वियों से क्षमा याचना कर शरीर त्यागा। इस प्रकार दो मुनियों को गोशालक ने देखते ही भस्म कर डाला।

गोशालक द्वारा प्रभु महावीर पर तेजोलेश्या प्रहार

निरपराध दो मुनियों के बलिदान ने भी गोशालक की क्रोध-ज्वाला शान्त न हुई। वह क्रोधावेश में अनर्गल बक रहा था। यह देखकर भगवान महावीर ने कहा-"गोशालक! एक अक्षर ज्ञान देने वाला भी

विद्या-गुरू कहलाता है, एक भी आर्यधर्म का वचन सुनाने वाला धर्म-गुरू माना जाता है। मैंने तो तुझे दीक्षित और शिक्षित किया है, मैंने ही तुझे पढ़ाया और मेरे ही साथ तेरा यह बरताव! गोशालक, तू अनुचित कर रहा है। महानुभाव! तुझे ऐसा करना उचित नहीं है।''

प्रभु महावीर के हित-वचनों का भी विपरीत परिणाम हुआ। शान्त होने के स्थान पर गोशालक अधिक उत्तेजित हो गया। वह अपने स्थान से सात-आठ कदम पीछे हटा और तेजस समुद्घात करने लगा। उसने क्षणभर में अपनी तेजःशक्ति को भगवान महावीर के ऊपर छोड़ दिया। उसका अटल विश्वास था कि इस प्रयोग से वह अपने प्रतिपक्ष का अन्त कर देगा, पर उसकी धारणा निष्फल सिद्ध हुई। पहाड़ से टकराती हुई हवा की तरह गोशालक-निसृष्ट तेजोलेश्या महावीर से टकराकर चक्कर काटती हुई ऊंची चढ़कर वापस गोशालक के शरीर में घुस गई। तेजोलेश्या के शरीर में घुसते ही जलता और आकुल होता हुआ गोशालक बोला- ''आयुष्मन् काश्यप! मेरे तपस्तेज से तेरा शरीर व्याप्त हो गया है। अब तू पित्त और दाह-ज्वर से पीड़ित होकर छह महीनों के भीतर छद्मस्थ दशा में ही मृत्यु को प्राप्त हो जाएगा।''

प्रभु महावीर ने कहा- ''गोशालक! तेरे तपस्तेज से मेरा नहीं, तेरा स्वयं का ही शरीर दग्ध हो गया है। मैं तो अभी सोलह वर्ष तक इस भूमंडल पर सुखपूर्वक विचरूंगा और हां! तू स्वयं ही पित्त-ज्वर रोग की पीड़ा से सात दिन के भीतर छद्मस्थावस्था में मृत्यु को प्राप्त होगा। गोशालक, तूने बुरा किया। देवानुप्रिय! इस कार्य का तुझे पश्चाताप करना पड़ेगा।''

प्रभु महावीर और मंखलिपुत्र गोशालक के इस विवाद के समाचार उद्यान से नगर तक पहुंच गए। लोग कहने लगे- ''आज कोष्ठकोद्यान में दो जिनों के बीच वाद हो रहा है। एक कहता है तू पहले मरेगा और दूसरा कहता है तू। भला इनमें सत्यवादी कौन होगा और मिथ्यावादी कौन? इस पर समझदार मनुष्य कहते कि इसमें संशय की बात क्या है? भगवान महावीर ही तीर्थंकर और सर्वज्ञ हैं और वे ही सत्यवादी हैं। गोशालक, जिन नहीं, पाखण्डी है और वही मिथ्यावादी है।'' श्रावस्ती के प्रत्येक चौक और मुहल्ले में ये बातें हो रही थीं।

अब गोशालक की तेजोलेश्या क्षीण हो चुकी थी। वह निर्विष नाग की तरह निस्तेज हालत में महावीर के सामने खड़ा था। इस समय अपने अनगार शिष्यों को संबोधन करते हुए भगवान ने कहा- ''आयुष्मन् श्रमणो! अग्नि से जली हुई घास जिस तरह निस्तेज हो जाती है, उसी तरह गोशालक अब तेजोलेश्या से हीन हो गया है। अब इसके साथ तुम कुछ भी प्रश्नोत्तर करके इसे पराजित कर सकते हो। अब इसके साथ धार्मिक विवाद करने में तुम्हें कोई भय नहीं।''

भगवान महावीर की आज्ञा पाते ही निर्ग्रन्थ श्रमण गोशालक के पास जाकर उससे धार्मिक प्रश्नोत्तर करने लगे, पर गोशालक इस चर्चा में अपना पक्ष-समर्थन नहीं कर सका। अपने धर्माचार्य की इस कमजोरी को देखकर उसके कितने ही शिष्यों ने आजीवक संप्रदाय का त्याग कर भगवान महावीर के पास निर्ग्रन्थ प्रवचन स्वीकार किया। इस घटना से गोशालक के धैर्य का अन्त हो गया। उसने अपनी भयकातर दृष्टि चारों ओर फेंकी और 'हाय मरा' इस प्रकार की करुण चीख के बाद वहां से लौटकर वह अपने स्थान गया।

गोशालक की अवस्था बड़ी दयनीय हो रही थी। अपनी तेजोलेश्या के प्रवेश से उसके शरीर में असह्य पीड़ा हो रही थी जिसे शान्त करने के लिए गोशालक विविध उपाय कर रहा था। एक आम की

गुठली अपने हाथ में लेकर उसे बार-बार चूसता, आन्तर वेदना को दबाने के लिए बार बार मदिरा पान करता, शारीरिक ताप शान्त करने के लिए अपने शरीर पर मिट्टी मिला जल सींचता, क्षण-क्षण में उन्मादवश हो, नाचता गाता और हालाहला को नमस्कार करता हुआ वह बड़े कष्ट से समय व्यतीत करने लगा।

अयंपुल व गोशालक

उस समय श्रावस्ती निवासी आजीवकोपासक अयंपुल गाथापति को 'हल्ला' वनस्पति के संस्थान के विषय में शंका उत्पन्न हुई कि हल्ला का आकार कैसा होता होगा। यह तर्क उसके हृदय में पिछली रात को उठा और प्रभातसमय अपने धर्माचार्य से इसका खुलासा पूछने के विचार से वह हालाहला की भाण्डशाला में गया, पर गोशालक की तत्कालीन उन्मत्त दशा को देखते ही लज्जित होकर वह पीछे हटा। आजीवक भिक्षु अयंपुल का मनोभाव ताड़ गए। उन्होंने तुरंत उसे अपने पास बुलाया और बातचीत में आगमन का कारण जान लिया।

गोशालक के तत्कालीन आचरणों का बचाव करते हुए भिक्षुओं ने उसे कहा- "अयंपुल! अपने धर्माचार्य को तुमने जिस स्थिति में देखा है उसके संबंध में उनका यह कहना है कि ये आठ बातें अन्तिम तीर्थंकर के समय में अवश्यंभावी होती हैं, जैसे- (१) चरम पान, (२) चरम गान, (३) चरम नृत्य, (४) चरम अञ्जलि कर्म (नमस्कार), (५) चरम पुष्कर संवर्तक महामेघ, (६) चरम सेचनक गन्धहस्ती, (७) चरम महाशिला कंटक संग्राम, और (८) चरम 'मैं तीर्थंकर'। ये आठों वस्तु चरम (अन्तिम)हैं, इस अवसर्पिणी काल में ये फिर होने वाली नहीं हैं।

आर्य अयंपुल, जल के विषय में भगवान का कथन यह है कि भिक्षु के काम में आने योग्य चार तो पेय जल होते हैं और चार अपेय।

पेय जल ये हैं- (१) गोपृष्ठज, (२) हस्तमर्दित, (३) आतपतप्त और (४) शिलाप्रभ्रष्ट।

(१) गौ के पीठ का स्पर्श करके गिरा हुआ जल 'गोपृष्ठज'।

(२) मिट्टी आदि पदार्थों से लिप्त हाथों से बिलोड़ा हुआ जल 'हस्तमर्दित'।

(३) सूर्य और अग्नि के ताप से तपा हुआ जल 'आतपतप्त'।

(४) पत्थर, शिला के ऊपर से जोर से गिरा हुआ जल 'शिलाप्रभ्रष्ट' कहलाता है।

पिए न जा सकें, पर किसी अंश में जल का काम दें वैसे चार अपेय जल इस प्रकार हैं- (१) स्थाल जल, (२) त्वचा जल, (३) फली जल, (४) शुद्ध जल।

(१) जल से भीगी खस की टट्टी और जलार्द्र घट वगैरह पदार्थ जिनका शीतल स्पर्श दाह की शान्ति करता है वह 'स्थाल जल' कहलाता है।

(२) कच्चे आम, बेर वगैरह जिनको चूसकर शीतलता प्राप्त की जाती है वह 'त्वचा जल' कहलाता है।

(३) मूंग, उड़द वगैरह की कच्ची फली को मुख में चबाकर जो शीतलता प्राप्त की जाती है उसको 'फली जल' कहते हैं।

(४) कोई मनुष्य छह मास तक शुद्ध खाद्य वस्तु का सेवन करे। इस बीच दो मास जमीन पर, दो मास काठ पर और दो मास कुश की पथारी पर सोवे, तब छठे महीने की आखिरी रात में पूर्णभद्र और मणिभद्र नामक दो महर्द्धिक देव वहां प्रकट होते हैं और अपने जल भीगे शीतल हाथ से साधक का स्पर्श करते हैं,